gari Pracharini Granthamala Series No. 22.

अनन्य-ग्रन्थावली

(राजयोग, ज्ञानयोग, विज्ञानयोग और विज्ञान-बोध)

ठाकुर सूर्यकुमार वर्म्मा —

द्वारा सम्पादित



और

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ।

१९१३

समर्पण

जिनकी कृपा और सहायता से मैं

आज यह काम कर सका उन

अपने पूज्य पिता, कविताप्रेमी,

ठाकुर गणपतिसिंह जी

की सेवा में

सादर

समर्पित ।

सूर्यकुमार वर्म्मा

परिचय

बाल्यावस्था में जब हमने राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द कृत गुटका पढ़ा था उस समय, उसमें हमने अनन्य कवि की राजयोग कविता का कुछ अंश भी पढ़ा था। वह कविता हमें बहुत पसन्द आई थी। हमारी इच्छा थी कि हमें अनन्य कविकृत और भी कविता पढ़ने को मिले परन्तु अब तक हमें वह कहीं भी प्राप्त न हो सकी। दो तीन वर्ष हुए जब एक दिन एक साधु हमारे पास आए। बात चीत में अनन्य का भी ज़िक्र निकला। आपने कहा अनन्य के ४ ग्रंथ हमारे पास हैं। हम आपको देंगे। आपने ही कृपाकर अनन्य की यह कविता हमें लिखा दी। कविता रोचक, हृदयग्राही, सरल, सबके समझने योग्य और भावमय है। कविता तो साधु महाराज से प्राप्त हो गई परन्तु अनन्य कवि का परिचय बहुत खोज करने पर भी हमें बहुत समय तक न मिल सका।

शिवसिंहसरोज में अनन्य कवि तीन हुए ऐसा लिखा है। एक तो अक्षर अनन्य संवत् १७१० में हुए। दूसरे अनन्य कवि १७९० में हुए। तीसरे अनन्य के सन् संवत् का पता नहीं चलता। अनन्य ने अपनी कविता में "राजा प्रथीचन्द" का सम्बोधन करके कविता की है। परन्तु इस बात का ठीक ठीक पता नहीं चलता कि ये राजा प्रथीचन्द कौन थे। हमारे एक मित्र ने हमें सूचना दी है कि मौज़ा गिरवासा परगना सोंढ़ा रियासत दतिया निवासी राजा प्रथीचंद के लिये ही यह कविता अनन्य कवि ने बनाई थी। उनके कथन और कविता की भाषा देखकर जाना जाता है कि अनन्य कवि बुन्देलखंडवासी ज़रूर थे। अनन्य कवि ने अपनी कविता में अपने निवासस्थान का कहीं पर भी परिचय नहीं दिया और न अपने ग्रंथों के बनाने का समय ही दिया है। सुना जाता है आप जाति के कायस्थ थे और राजा प्रथीचन्द

के दीवान थे। एक दिन वे राजा के व्यवहार से विरक्त होकर घर से निकल साधु हो गए। जब आप घर पर कई दिन हो गए वापस न आए तब राजा ने तलाश करवाई। आपका पता लगने पर राजा स्वयं लेने गए। जिस समय राजा आपके पास गये आप पैर पसारे लेटे थे। आपने राजा के आने पर न तो उनका स्वागत किया और न उठकर बैठे। राजा ने अपना अनादर समझकर पूछा! "पैर पसारे कब से?" आप ने उत्तर दिया—"हाथ समेटा तब से" अर्थात् जब से हाथ समेट लिया, माँगना या लेना छोड़ दिया तब से पैर फैला दिए। राजा जवाब सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें समझा बुझाकर फिर वापस ले गए। उसी समय राजा के लिये आपने राजयोग ग्रंथ बनाया।

पहले तो हमने सोचा था कि अनन्य का पूरा परिचय मिल जाने पर ही पुस्तक छपाने के लिये भेजते परन्तु दो तीन वर्ष की खोज पर भी जब कोई विशेष पता न चला और न पता चलने का कोई भरोसा पाया गया तब यही निश्चय किया कि अनन्य की जीवनी के अभाव से उनकी कविता से हिन्दी कविता के प्रेमियों को वंचित रखना उचित नहीं। सम्भव है पुस्तक प्रकाशित होने पर अनन्य की कविता का प्रचार बढ़ने से उनकी जीवनी का पाठकों द्वारा ही पता चल जाय। अतएव यह अनन्यग्रंथावली प्रकाशित की जाती है। अगर हमारे पाठकों में से किसी को अनन्य के विषय में कुछ ज्ञान हो तो वे सूचना दें दूसरे संस्करण में वह छाप दिया जायगा।

सूर्यकुमार वर्म्मा।

ग्वालियर—२१—६—१३

——:०:——

मेरा अनुमान है कि जिन अनन्यकवि के चार ग्रंथ इस पुस्तक में दिए हैं उनका दूसरा नाम अक्षर-अनन्य था। ये दतिया राज्य के

सेंहुड़ा ग्राम के रहनेवाले थे और जाति के कायस्थ थे। इनका जन्म सन् १६५३ में हुआ था। दतिया के राजा दलपतराय (१६९७ से १७०९ ई०) के पुत्र पृथीराज या पृथीचंद के ये गुरु थे। ये बुंदेलखंड के प्रसिद्ध महाराज छत्रसाल के समकालीन थे। इनके गई ग्रंथों का पता लगा है जिनके नाम ये हैं—

(१) अनुभव तरंग। (२) राजयोग, जो इस पुस्तक में सम्मिलित है। (३) प्रेमदीपिका, जिसमें उद्धव का मथुरागमन वर्णित है। (४) ज्ञानबोध, जो विज्ञान योग नाम से इस पुस्तक में प्रकाशित है। (५) ज्ञान पचासा, जो ज्ञानयोग नाम से प्रकाशित है। (६) दैवशक्तिपचीसी जिसे शक्तिपचीसी या अनन्यपचीसी भी कहते हैं। (७) भवानीस्तोत्र। (८) वैरागतरङ्ग। (९) योगशास्त्र। (१०) कविता संग्रह। एक ग्रन्थ जो विज्ञानबोध नाम से प्रकाशित है उसका पता अब तक नहीं चला था।

सन् १९०६—०८ की हिन्दी पुस्तकों की खोज की रिपोर्ट में मैंने इनका उल्लेख इस प्रकार किया है—

"Aksara Ananya (Fl. 1653 A. D.). He was a Kâyastha of Senhurâ, a village in the Datia State. He was a Sannyâsi well-versed in the Vedantic system of philosophy. He was so skilled in metrical composition that he often spoke in verse. Once Mahârâja Chhattrasâla of Pannâ invited him to his court, but he declined to attend. He was the first man to translate the Durga Saptaśati into Hindi verse. His descendants are still found in the Datia State, Being the spiritual preceptor of Kunwar Prithirâja, he received from him some villages in the way of a *jagir*, which he handed over to his brother."

इसी रिपोर्ट में राजा पृथीचन्द्र या पृथीराज के विषय में यह लिखा है—

"Kunwar Prithirâja, son of Dalpat Rai (1697-1709) of Datia. He was himself a good poet and wrote under the *non-de-plume* Rasanidhi. The poet Aksara Ananya flourished at his court."

श्यामसुन्दर दास।

१८—७—१९१३

अनन्य-ग्रंथावली

——:o:——

अथ राजयोग ।

आत्मा ज्ञान सो ज्ञान वहै परमात्मा ध्यान सो ध्यान सुरेश्वर
वेद विधान विधान वहै सतपात्रहि दान सुदान धनेश्वर ॥
अन्तर भक्ति सुभक्ति वहै गति अंतर की परखे परमेश्वर ।
वेद प्रमाण अनन्य भनै यह भेद सुनो पृथिचन्द्र नरेश्वर ॥ १ ॥

त्रोटकछंद ॥

यह भेद सुनो प्रथिचंदराय । फलचारिहु को साधन उपाय ।
यह लोक साध लोकीक लोग । खानहु कमान रुचि कामभोग ॥१॥
यह लोक सधे सुत सुक्ख बाम । परलोक नसे बसि नर्क धाम ।
परलोक साध यक है अतीत । तप तीरथ ब्रत करि कष्ट नित्त ॥२॥
यह लोक न तिनको सुख बिलास । परलोक सधे सुख स्वर्गवास ।
परलोक लोक दोउ सधें जाहि । सुई राजयोग सिद्धांत आहि ॥३॥
निज राजयोग ज्ञानी करंत । हठि धर्म्म मूँठ साधत अनंत ।
यक पवन खेंचि आसननि जोरि । यक हाथ पाँउ कटि ग्रीव तोरि ॥४॥
यक घाम शीत जल सहत अंग । यक पंच-अग्नि तपि देह भंग ।
एक लँघत फिरत रोगरा खात । यक भ्रमत फिरत तीरथनि जात ॥५॥
यह बिविध पंथ काया कलेश । दुर्लभ करि पावत पद प्रवेश ।
जैसे भुजंग बामी मझार । यक मूढ़ खोदि काढहि प्रचार ॥६॥
ते हठि करि पकरें फारि खाई । त्यों हठि साधनि के पंथराई ।
यक ऊपर नहि खोदन करंत । पढि मंत्र खेंचि पवारहि तुरंत ॥७॥
त्यों राजयोग सुख-सहज माहि । सिद्धांत लहत तन कष्ट नाहि ।
ऊपर बिलास बिलसे समस्त । निज ज्ञान ध्यान मनसा दुरुस्त ॥८॥
अपनो करि कछु रहिये न मानि । सब ईश्वरही को बिभव जानि ।
करि भ्रकुटि बीच ध्वनि शब्द मूल । सुइ मनसा सुमिरन ध्यान कूल॥९॥

बैठे जगमें रहिये सुचैन । दिखिये सब कुछ मुँदिये न नैन ।
करिये सब कुछ करिवे जु होइ । मनसा सुमिरन धुनि ध्यान लोइ १०
बातें करिये तौ चारि उक्ति । यक धर्म्म अर्थ की काम मुक्ति ।
इन चारिहु में जो सधै न एक । तौ मिथ्या जन्म बिना विवेक ॥११॥
हाँसी चवाउ गिल्ला विवाद । काइन बातनि में है सवाद ।
कहिवो सुनिबो मतलब प्रमान । करि सेवा सुमिरन सुरति ध्यान १२
बैठत उठत चितवत चलंत । खातहु कमात सुमिरन करंत ।
जो अन्तर सुमिरन सुरति आहि । तौ बाहिर कर्म्मन लगै ताहि १३
यह मनसा गति यह कहत वेद । मति गति साधत यह ज्ञान भेद ।
जो मति न सधे मन कर्म्म भोइ । तौ टोपी दिये नहि मुक्ति होइ ॥१४
जो मति गति साधन सुरति ज्ञान । तौ पाग नहीं रोकंत ध्यान ।
यह मनही को कारन विचार । सुत बंधु और परिवार नार ॥१५॥
का होत मुँडाये मूंढ़ बार । का होत रखाये जटाभार ।
का होत भामिनी तजें भोग ? जोलौं न जगै थिर चित्त योग ॥१६॥
थिर चित्त रहै सुमिरन मझार । ऊपर साधे परलोक चार ।
यह राजयोग सुख को निधान । कोइ ज्ञानवंत जानत सुजान ॥१७॥
अर्जुन जनकादिक आदि लोग । इन राजनि साधे राजयोग ।
सुख राजयोग करो अरु सिद्ध । को अतिथ भयो इनतें प्रसिद्ध ॥१८॥
यह अतिथन तनहूँ में अति अनूप । सुनु राजयोग सिद्धांत भूप !
सुखमारग यह प्रथिचंदराइ । इहि सम न आहि दूजो उपाइ ॥१९॥
यह राजयोग कै भक्ति ज्ञान । सेवा सुमिरन सुरति ज्ञान ।
जो यह न सधे बिन ज्ञान मूढ । तौ अजपा साधे स्वांस रूढ ॥२०॥
जो यह न सधे अजपा उचार । तौ इष्टदेव धरि ध्यान सार ।
जो ध्यान न आवे बिना देख । तौ प्रतिमा थापहु अष्टभेख ॥२१॥
निज प्रतिमा थापहु दरस नित्त । सुइ मूरति राखहु हृदय चित्त ।
यहि भांति ज्ञान उर बसे आन । यह ईश ध्यान नरनाह जान ॥२२॥

जो ध्यान सधे नहि लगे चित्त। तौ नेम सहित जप मंत्र नित्त।
जो मंत्रहु बिधि नहि सधे राउ। तौ पावन प्रभु को लेइ नाउ ॥२३॥
तन शुद्ध होइ मुख शुद्धवान। मन शुद्ध होइ सर्वज्ञ जान।
मन को स्वभाव भ्रमिवो अकत्थ। तौ सुमिरन साधन ज्ञान गत्थ २४
मुख को स्वभाव बकिवो नरेश। तौ करे ज्ञान चरचा सुबेश।
करि भक्ति भजन सुमिरन सुबुद्धि। मेटे मन की भ्रमना कुबुद्धि २५
जित जित मनसा भरमें अनंत। तित तित सुमिरन मन में करंत।
कछुक दिननि करिये उपाइ। परि आइ बहुरि मंसा सुभाई ॥ २६ ॥
मनसा सुमिरन ध्वनि ध्यान लीन। यह राजयोग जानहु प्रवीन।
जो राजयोग यह सधे राज। तौ मनबांछित सब होइ काज ॥२७॥
अरु कर्म्म लिप्त कबहूं न होइ। जग जीवन मुक्त सदा सुहोइ।
यह ज्ञानभेद अरुभेद साखि। अक्षर अनन्य सिद्धांत भाखि ॥२८॥

दोहा ॥

राजयोग सिद्धांत यह, सुनो राज प्रथिचंद।
या सम और न दूसरो, सोधि शास्त्र स्वच्छंद ॥ १ ॥
जो चाहो संसार सुख, अरु सिद्धांत प्रकास।
तौ साधो सरवज्ञ यह, राजयोग अनयास ॥ २ ॥

इति राजयोग सम्पूर्णम्।

अथ ज्ञानयोग ।

सवैया ॥

विधि भेद निषेधन जाने कछू मति के अनुसार लही सो लही ।
समुझायें नहीं समुझे गुरु के मन के अनुमान कही सो कही ॥
नहीं वेद पुरान की रीति गुने अनरीति सों टेक ठई सो ठई ।
यह तामस ज्ञान अनन्य भने हठि मूरख गांठि गही सो गही ॥१॥
जु करे सुविवेक विचारि करे फल चारि विषे हित साजत है ।
करि सेवहि देव रिझाव भले बरु पाइ भुवा पर गाजत है ॥
... ...
यह राजस ज्ञान अनन्य भने धर्म सो राज विराजत है ॥२॥
शील संतोष सुबुद्धि सुलक्षन धीर गँभीर भने जग न्यारे ।
धर्म्म दया निर्लोभ निरासक निर्भय भक्ति अराध न हारे ॥
धर्म्म करे सुकरे प्रभु अर्पण नहीं फल चाहत बोध उजारे ।
सात्विक ज्ञान अनन्य भने यह संत सदा भगवंत पियारे ॥३॥
राग न द्वेष न हर्ष न शोक न बंधन मोक्ष की आस रही है ।
बैर न प्रीति न हार न जीति न गारि न गीत सुरीत गई है ॥
रक्त विरक्त न मान कछू शिव शक्ति निरंतर जोति लही है ।
पूरन ज्ञान अनन्य भने अवधूत अतीत की रीति यही है ॥४॥
को हरि को हर को सुर को नर को तर को वह औार न आसो ।
को घर को बन को प्रभु को जन निर्गुन सर्गुन भर्म्म विनासो ।
को पुनि संत असंत गने सबसो समिता व्रत रूप प्रकासो ।
पूरन ज्ञान अनन्य भने परिपूरन ज्ञान अखंडित भासो ॥५॥
मूरख के प्रतिमा परमेश्वर बालक रीति गही सुलही है ।
उत्तम जोति स्वरूप विचार सु आत्मा ध्यान में बुद्धि दई है ॥
एक बेतत्व की मूंड़ सधे कहि केवल ब्रह्म बसे सुवही है ।

पूरन ज्ञान अनन्य भने सरवज्ञनि को शिवशक्ति मई है ॥६॥
कोऊ कहे बैकुंठ बसें प्रभु कोइ कहे निज धाम दुलीचे ।
कोऊ कहे ब्रह्माण्ड परे परब्रह्म सबे कहे सो अवधीचे ॥
वस्तु प्रत्यक्ष अनन्य भने जिमि आपुहि गोप्य करें दृग मीचें ।
व्योम समान अखंडित्त ईश्वर तै सोइ ऊपर तै मुई नीचे ॥७॥
प्रभु तो बरनो बैकुण्ठहि में कहि व्यापक कौन चराचर है ?
स्वरमंडल खंडल दुष्ट कहो तो अखंड समस्त बराबर है ॥
हरि राधिक कुञ्ज विहारी कहो तो विहारु तो तासु घराघर है ।
तत सर्वस्व रूप अनन्य भने परिपूरन ब्रह्म परापर है ॥८॥
हरि में हरी सो स्वर में स्वर सो हर में हरसो सुखदायक है ।
नर में नर सो तर में तर सो घर में घर सो घर घायक है ॥
बड़ में बड़ सो सुअनन्य भने घर में घर सो घट नायक है ।
हम में हम सो तुम में तुम सो सब सों सब में सब लायक है ॥९॥
जल में जल सो थल में थल सो तल में तल सो जग जोति छई ।
बन में बन सो घन में घन सो तन में तन सो तम माहि दई ॥
सुर में सुर सो सुअनन्य भने यह भेद लहें सरवज्ञ मई ।
बहु रूप अनेक सुभाई सुहै जित देखि तितें शिव शक्ति मई ॥१०॥
सब रूप को रूप स्वरूप वहै अनरूप को रूप सबै लहिये ।
सब सार को सार विचार यहै सब सार असार सबे गहिये ॥
सब भेद को भेद अभेद मतो अनभेद को भेद वहै यहिये ।
सब नाम सुनाम अनन्यभने अननाम को नाम कहा कहिये ॥११॥
निर्गुन सर्गुन नाम अभेद यह भेद सनातनही चलि आयो ।
निर्गुन रूप है एक चिदात्मा सर्गुण रूप अनेक है छायो ॥
वाही तें भेद बढ़ो जग में जिहि जोई सुनो तिहि सो ठहरायो
संग असंग अनन्य भने सरवज्ञनि सो सरवज्ञ बतायो ॥१२॥
आपुहि निर्गुन आपही सर्गुन आपुहि निर्भय भेद बताया ।
आपुहि शून्य है आपुहि ज्योति है आपही व्यापी चराचर काया ॥

आपुहि मंत्र अनन्य भने शिवशक्ति अखंड परापर छाया।
आपुहि जीव है आपुहि ईश है आपुहि ईश्वर आपुहि माया ॥१३॥
माटी की भूमि है भूमि सो माटी मांटिहि भूमि न भेद न माया।
पानी को सिंधु है सिंधु सुपानी है पानिहि सिंधुहि द्वै न बताया॥
यों अनभेद अनन्य भने कहिवे मँह भेद गुरु समझाया।
दीपक ज्वाल है ज्वाल सुदीपक माया सुब्रह्म है ब्रह्म सुमाया॥१४॥
ज्वाल कहं कोउ ज्योति लहे वै सादर में पुरुषारथ आया।
देह कहै नर नाम लहें अरुनारि कहें जबही कहै काया॥
यों अनभेद अनन्य भने हठि मूढ़नि वाद विवाद बढ़ाया।
एकवै तत्व की माड सबै भल वाहि कहं सो कहें मलमाया॥१५॥
ब्रह्म कहो अरु माया कहो कहिवे में कहा है कहा कहि कीजे।
वस्तु है एक अभास अनेक हैं सर्व विषे निहचै मन लीजे॥
एक अनेक अनन्य भने सुअनेक में एक विवेक धरीजे।
एकही साधे सधे सबही सुवरी दुवरी प्रति भेद न दीजे॥१६॥
अन्न अभाव अनन्न सुभावही पूरन ब्रह्म प्रभाव अखंडित।
रूप विराट निराट निराटक फाटक कोटिक ओट कदंडित॥
आपुही झझके झिझुके गुर भेद यहै सब जानत है मतिमंडित।
आपमें आप अनन्य भने सुवहे ततज्ञान कहें सत पंडित॥१७॥
छोटे बड़े सब पंथ उपासक ग्रंथ उपासक बहुधा है।
ब्रह्म वहै सर्वज्ञ अखंडित व्यापक सर्व समान उदा है॥
वेद है तेई प्रमान यहै मसजिद यहै नहीं तत्व जुदा है।
ऋतश आगि अनन्य भने जग सोइ सदा शिव सोई खुदा है॥१८॥
कोऊ राम कहे पर नाम कहे कोऊ कान्ह गुपालजु वानत है।
अरिहंत कोऊ भगवंत कहे कोउ दत अलेख बखानत है॥
वह ईश्वर एक अनेक मते अपने अपने उर आनत है।
जग भंजन ग्रंथ अनन्य भने यह भेद सुजान सुजानत है॥१९॥
यक निर्गुन रूप निरूपत है यक सगुन रूपहि देखत है।

यक ज्योति स्वरूप बखान करें यक शून्य स्वरूपही लेखत है ।
यक मानत है अवतारिन को करता विधि एक विशेखत है ॥
सरवज्ञ सो धन्य अनन्य भने प्रभुमय सबको सब देखत है ॥ २० ॥
धर्म्म बिना सतसंग नहीं सतसंग बिना नहि भक्ति हुलासे ।
भक्ति बिना नहि शुद्ध हिये हिय शुद्ध बिना नहि बुद्धि बिलासे ॥
बुद्धि बिना अनुमान नहीं अनुमान बिना नहीं ज्ञान प्रकासे ।
ज्ञान बिना जु अनन्य भने परमात्मा तत्त्व स्वरूप न भासे ॥ २१ ॥
भूषन हाटक सागर घाटक काटक पाटक नाम कहे हैं ।
भूमि सो भैानन खांड खिलोननि पैानलि के उनमान कहे हैं ॥
... ...
अलि वस्तु अनन्य भने शिव शक्ति समस्त स्वरूप सुआप लहे हैं ॥२२॥
हाटक के बहु भूषण है तिन भूषण में नहीं हाट कहानी ।
सागर में लहरें लहिये लहरेनि बिषे वह सागर पानी ॥
योतत रूप अनन्य भने न बिना ततरूप यहै उर आनी ।
एक ते रूप अनेक लहैं सुअनेक में एक लखे सुई ज्ञानी ॥ २३ ॥
ब्रह्म स्वरूप वेदांत कहें अरु न्याय कहे करता उर सूरे ।
बोध कहै प्रभु बोध स्वरूप पातञ्जलि योग सुभाव गरूरे ॥
जैनि कहै अरहंस स्वरूप विषई प्रकृति नरोत्तम रूरे ।
तत्व स्वरूप अनन्य भने प्रभु सर्व प्रभा पुरुषारथ पूरे ॥ २४ ॥
बिधि रूप रचो रचना विधि सो हरि रूप प्रजे प्रतिपालत है ।
शशि सूरज रूप प्रकाश करें धरि रुद्र स्वरूप सँघारत है ॥
शिव शक्ति विलास अनन्य भने मकरी जिमि जाल पसारत है ।
नहीं दूसरो कारन कारज में प्रभु आपुहि आप विहारत है ॥२५॥
आपुहि पूरन ब्रह्म अखंडित आपु भरे जग जीव विहारे ।
ज्यों निधि में लहरें लहरें निधि एक अनेक सुभाव सो धारे ॥
यों लहि भिन्न अनन्य भने अपकर्म्म के बंधन फंदन पारे ।
भेद कहा यह भेद कहैं जुई भेद कहैं सुई भेद हमारे ॥ २६ ॥

जनि वेद पुराननि में भरमो जनि संत असंतन सों उरझो ।
जनि इन्द्रिन के वश भूलि रहो जनि राजस तामस सों खुरजो ॥
लहि आतम ब्रह्म प्रमोद रहो जनि जीव दशा गहि के उरझो ।
करि तत्व विचार अनन्य भने क्रम ते इन कर्मनि ते सुरझो ॥ २७ ॥
चाहत कर्मनि ते सुरझो तो तजो फल कर्मनि की अभिलाषे ।
पूरन ब्रह्म लहो सबमें निज आपु में ईश्वर भिन्न न भाषे ॥
बंधन मानि ना मुक्ति की आशा को पूरन ज्ञान सुधारस चाखो ।
आपु अपान अनन्य भने करतूति सबै कर तापर राखो ॥ २८ ॥
तनु गर्भ बनावत जन्म जनावत कर्म्म कमावत कै अपनो ।
प्रति स्वांस खिभावत बुद्धि रमावत भक्ति पचावत है तपनो ॥
दृग ज्योति जगावत रैनि सुआवत सुतनि दिखावत है सपनो ।
करता करतूति अनन्य भने न करो क्रत होत कछू अपनो ॥ २९ ॥
तारन बोरन बंधन छोरन मारन पालन हार रहे है ।
सोषन पोषन तोष वितोषन दूषन भूषन लोक लहे है ॥
रक्षन भक्षन यो सब लक्षन वेद विचक्षन टेरि कहे है ।
कारन कर्म्म अनन्य भने सरवज्ञ मतें सरवज्ञ वहे है ॥ ३० ॥
वहे स्वरलोक वहे नरलोक वहे तरलोक अलोक भयो है ।
वहे बन बाट वहे घर घाट वहै पुर हाट बिराट छयो है ॥
वहै सब ठौरन दूसर औार वहै सब कोटिक ठौर ठयो है ।
व्यापक सर्व अनन्य भने यह भेद विचारत भेद भयो है ॥ ३१ ॥

वाही की रैनि है वाही को वासर वाही की ग्रीष्म वाही को सावन ।
वाही की शून्य है वाही की जोति है वाही की भूमि प्रकाश उपावन ॥
वाही को माठ अनन्य भने बड़ छोट बराबर रूप उपावन ।
वाही को कंस है वाही को कान्हरा वाही को राम है वाही को रावन ॥३२॥
वाही स्वरूप को रूप सबै तब आपु कहा पर वाही रहे ।
कहि काहि को देखन ध्यान करो तब होयु इते मन मारि रहे ॥